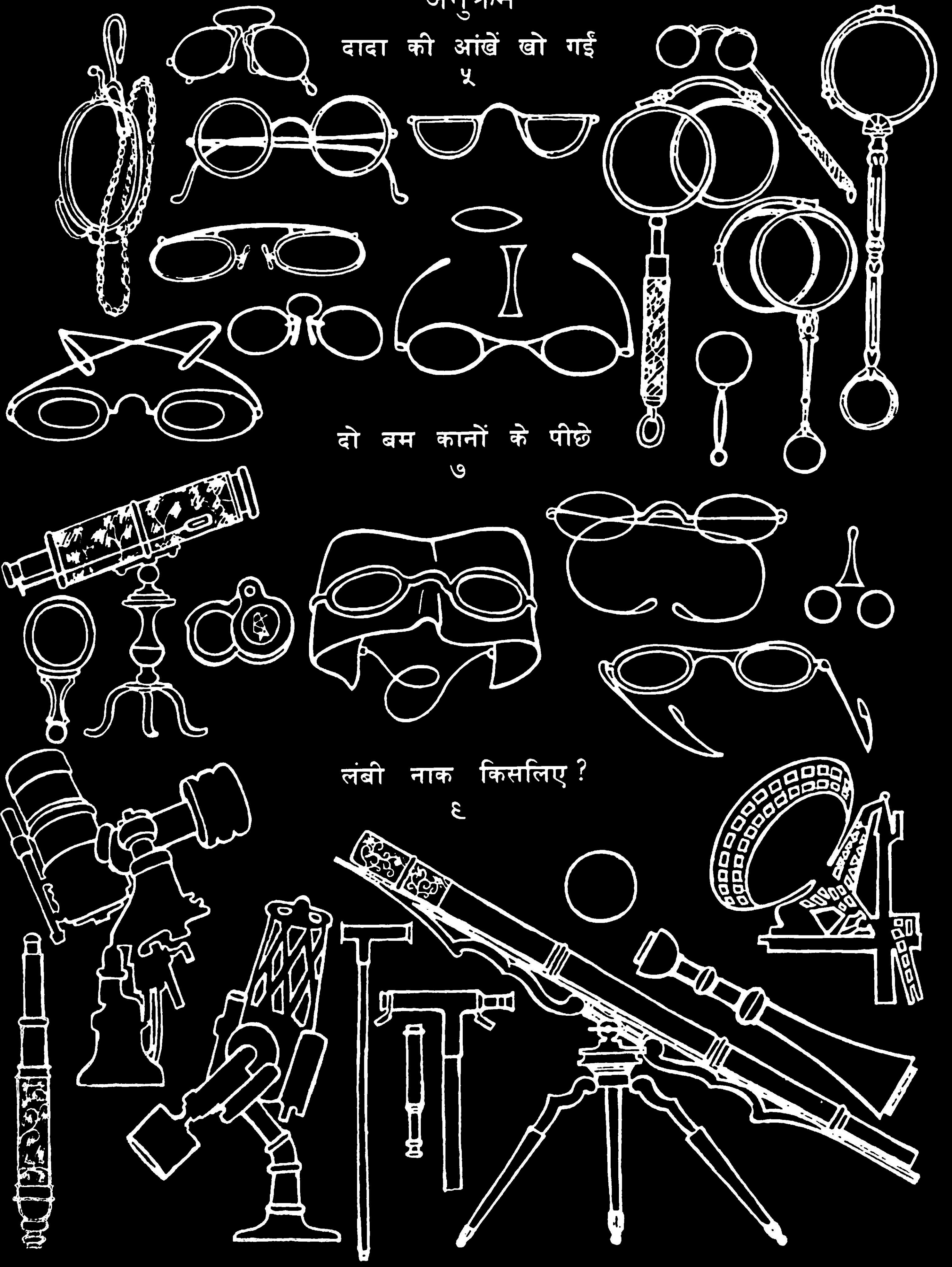
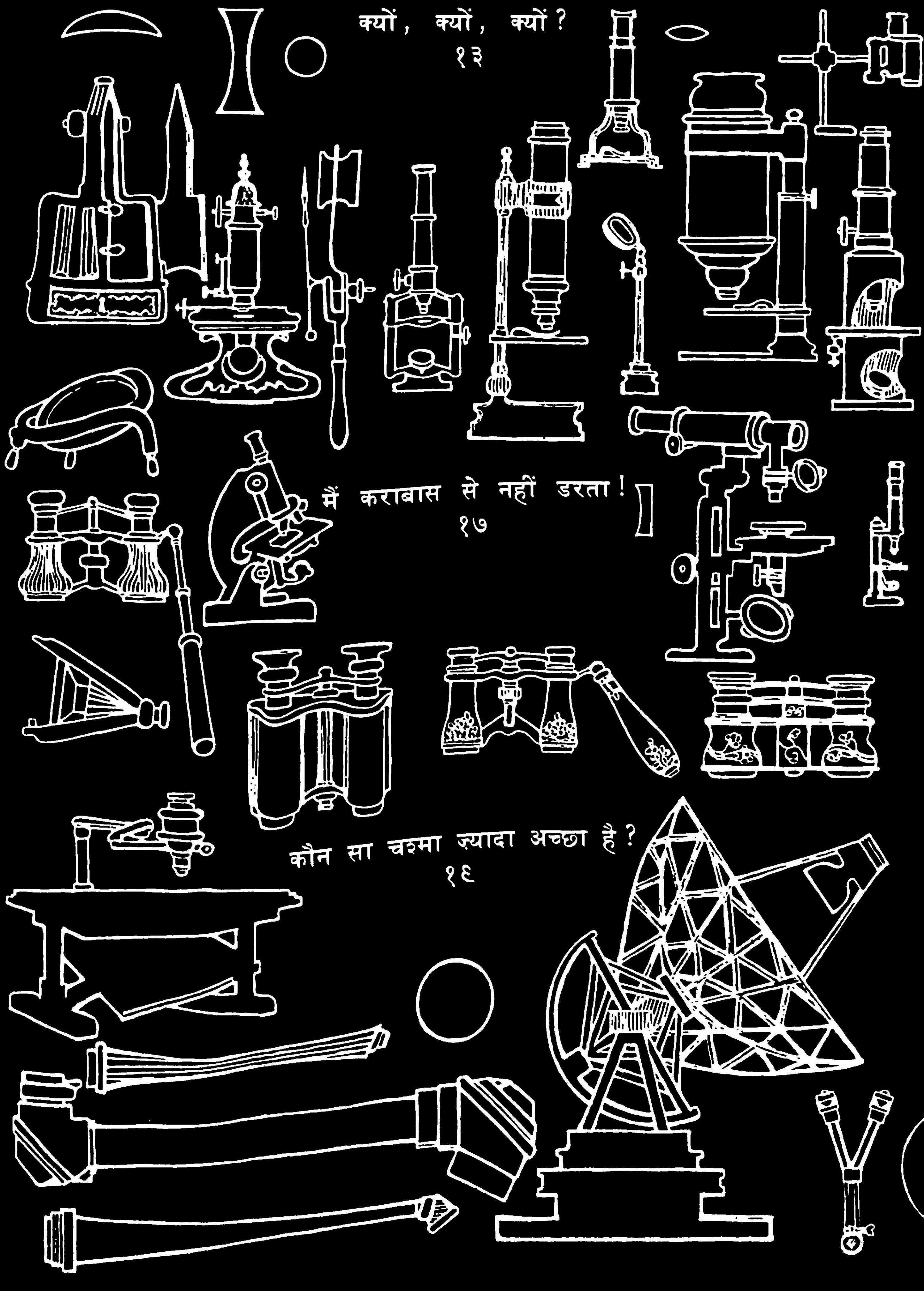
गेओर्गी युरमीन

दादा का चश्मा

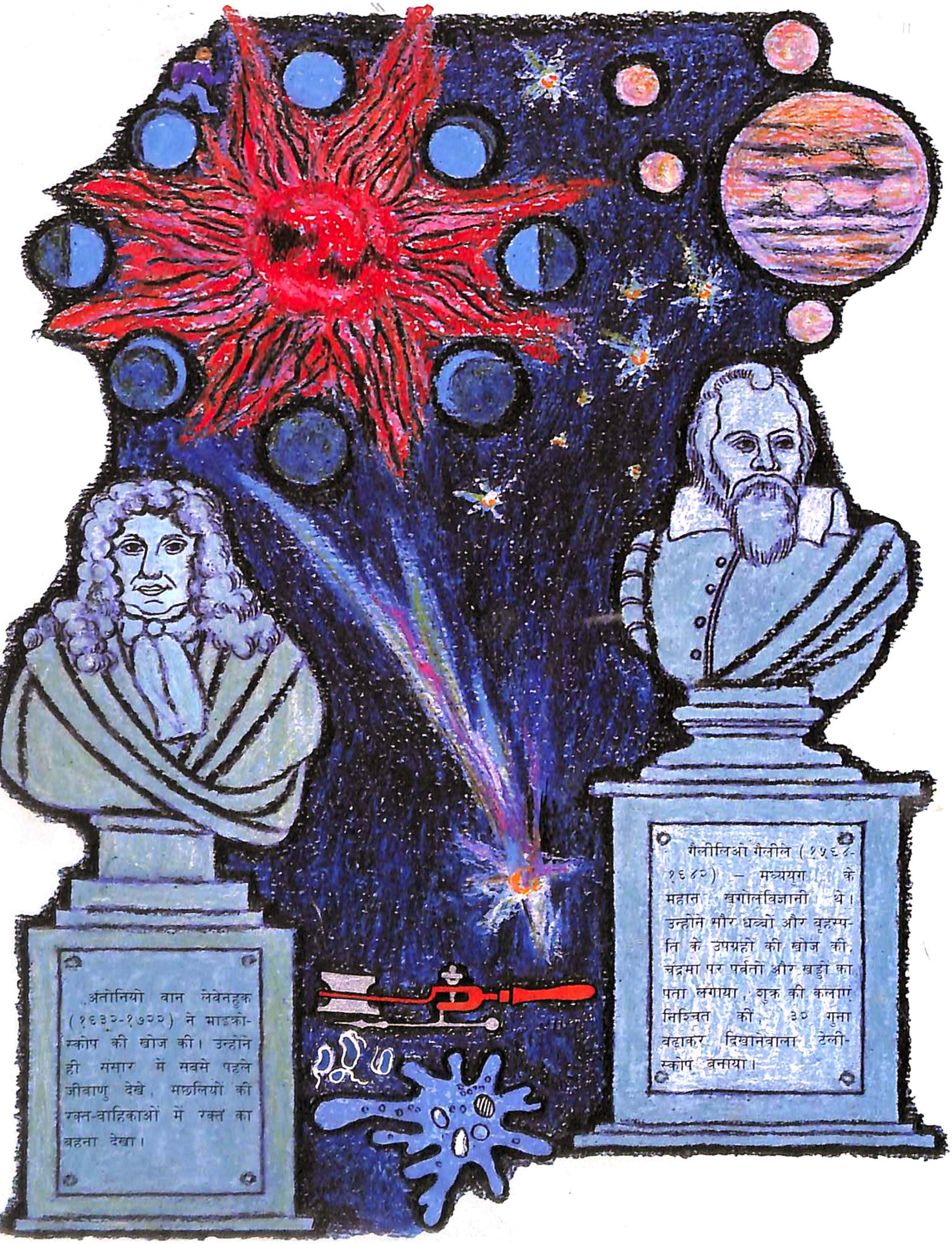


अनुक्रम









अंतोनियो वान लेवेनहुक (१६३२-१७२२) ने माइक्रोस्कोप की खोज की। उन्होंने ही संसार में सबसे पहले जीवाणु देखे, मछलियों की रक्त-वाहिकाओं में रक्त का बहना देखा।
गैलीलिओ गैलीले (१५६४-१६४२) – मध्ययुग के महान खगोलविज्ञानी थे। उन्होंने सौर धब्बों और बृहस्पति के उपग्रहों की खोज की, चद्रमा पर पर्वतों और खड्डों का पता लगाया, शुक्र की कलाएं निश्चित कीं, ३० गुना बढ़ाकर दिखानेवाला टेलीस्कोप बनाया।

गेओर्गी युरमीन

दादा का चश्मा

रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५


बिना कमानी का
एक आख का
लार्नेट

दादा की आंखें खो गईं

मेरे एक दादा हैं। दादा के बाल एकदम सफ़ेद हैं।

मैंने पूछा:

"ये ऐसे क्यों हैं?"

"वक्त ने सफ़ेद कर दिये हैं।"

दादा की कमर झुकी रहती है।

मैंने पूछा:

"यह ऐसी क्यों है?"

"वक्त से कमर झुक गई है।"

मेरे दादा की आंखों से भलाई छलकती है, उनके गिर्द झुर्रियों का जाला है। यह भी शायद वक़्त का ही काम है। और इन आंखों पर दादा सदा चश्मा लगाये रहते हैं, चमकते फ़्रेम वाला चश्मा।

मैंने पूछा:

"दादा जी, आप चश्मा क्यों पहनते हैं?"

वह 'रेडहुड' कहानी के भेड़िये जैसी मोटी आवाज़ में बोले:

"ताकि तुम्हें अच्छी तरह देख सकूं। मेरी आंखें तो समय से बिल्कुल अंधी हो गई हैं।"

एक दिन दादा ने मुझसे पूछा:

"तुम्हें पता है, मेरी आंखें कहां हैं?"

मैं हैरान हो गया, भला आंखें भी कहीं खो सकती हैं?

दादा हंसने लगे:

"मैं चश्मे की बात कर रहा हूं। वह मेरी आंखों का काम जो करता है।"

मैं दादा का चश्मा ढूंढने लगा। फिर मैंने दादा पर नज़र डाली – चश्मा उनकी नाक पर था।

दादा ठंडी आह भरकर बोले:

"देखा, लगता है वक्त ने याददाश्त भी कमज़ोर कर दी है।"

एक दिन दादा का चश्मा सचमुच खो गया। हमने सब जगह ढूंढ मारा, पर चश्मा कहीं था ही नहीं: न मेज़ पर, न मेज़ के नीचे, न आले पर और न ही नाक पर। चश्मा जैसे धरती में ही समा गया था।

"दादा जी, अब आप अखबार कैसे पढ़ेंगे?"

"दादी का चश्मा पहनकर देखता हूं।"

सो, उन्होंने दादी का चश्मा पहन लिया। पर वह उनके काम नहीं आया, उस चश्मे से तो उन्हें बिल्कुल कुछ भी दिखाई नहीं देता था। क्योंकि हर आदमी की अपनी नज़र होती है और चश्मे के शीशे भी सबके अपने-अपने होते हैं। जो चश्मा दादी के लिए ठीक है, वह दादा के लिए ठीक नहीं, और दादा का चश्मा दादी के लिए ठीक नहीं।

"दादा जी, अब आप अखबार कैसे पढ़ेंगे?"

"हां, शूरिक, जब तक चश्मा मिल नहीं जाता, चालाकी बरतनी पड़ेगी। पुराने ज़माने में लोग जैसे करते थे, वैसे करना पड़ेगा।"

"कैसे?"

"ऐसे!"

दादा ने आतिशी शीशा – आवर्धक लैंस – लिया और उसे अखबार की पंक्तियों पर चलाने लगे।

लैंस के बिना अक्षर छोटी सी चींटी जितने थे और लैंस में माचिस की डिबिया जितने बड़े।

दादा बाईं आंख भींचे हाथ से लैंस पंक्तियों पर चलाते जा रहे थे और कहते जा रहे थे:

"उफ़, कितना मुश्किल है ऐसे पढ़ना! मेरा चश्मा क्यों नहीं मिल जाता।"

मुझे दादा पर तरस आया: बेचारे ख्वाहम-ख्वाह परेशान हो रहे हैं। सो मैं फिर से चश्मा ढूंढने लगा।

आखिर मैंने चश्मा ढूंढ ही लिया। वह दादा की किताब के पन्नों के बीच दुबका पड़ा था। कमबख्त चुपचाप दुबका हुआ था, जैसे हम उसे न ढूंढ रहे हों।

"दादा जी, यह रहा आपका चश्मा!"



दो बम कानों के पीछे

"लो, शूरिक, फिर मुसीबत हो गई: मेरे पहियों के बम टूट गये," दादा ने शिकायत की।

पहले तो मैं हैरान रह गया: कैसे बम? कैसे पहिये? फिर मुझे दादा की पहेली याद आ गई और मैं सब कुछ समझ गया।

पहेली यह है:

> क्या छिपा है इसके पीछे?
> दो बम कानों के पीछे,
> आंखों पर दो पहिये,
> नाक पर मैंने टिकाये।

बूझ ली?

मैंने भी तुरंत ही बूझ ली थी और चिल्ला पड़ा था: "चश्मा! चश्मा!"

बस यही बम-कमानियां जो कानों पर टिकी रहती हैं, टूट गई थीं। इसलिए पहिए-शीशे बार-बार दादा की नाक से गिर जाते थे।

"अब क्या करें?"

दादा ने मुझे समझाया: "घबराओ नहीं, दुकान में ले जायेंगे, वहां ठीक कर देंगे। अभी फिर से वैसे ही काम चलाते हैं, जैसे पुराने ज़माने में लोग चलाते थे।"

दादा ने चश्मे के दोनों शीशों से एक-एक डोरी बांधी फिर गुद्दी पर डोरियों की गांठ बांध दी और आराम से अखबार पढ़ने लगे।

दादा की गुद्दी पर रिबन जैसी गांठ बंधी डोरियों को देखते-देखते जब मैं उकता गया, तो मैंने पूछा:

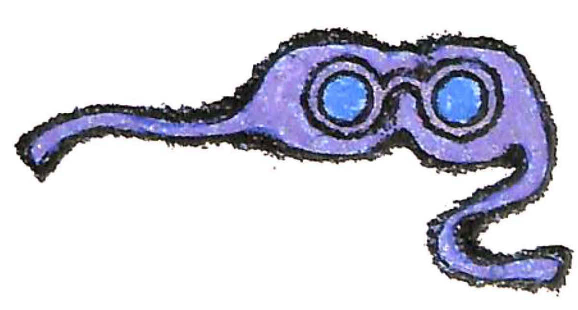
"क्या पुराने ज़माने में लोग चश्मा ऐसे पहनते थे?"

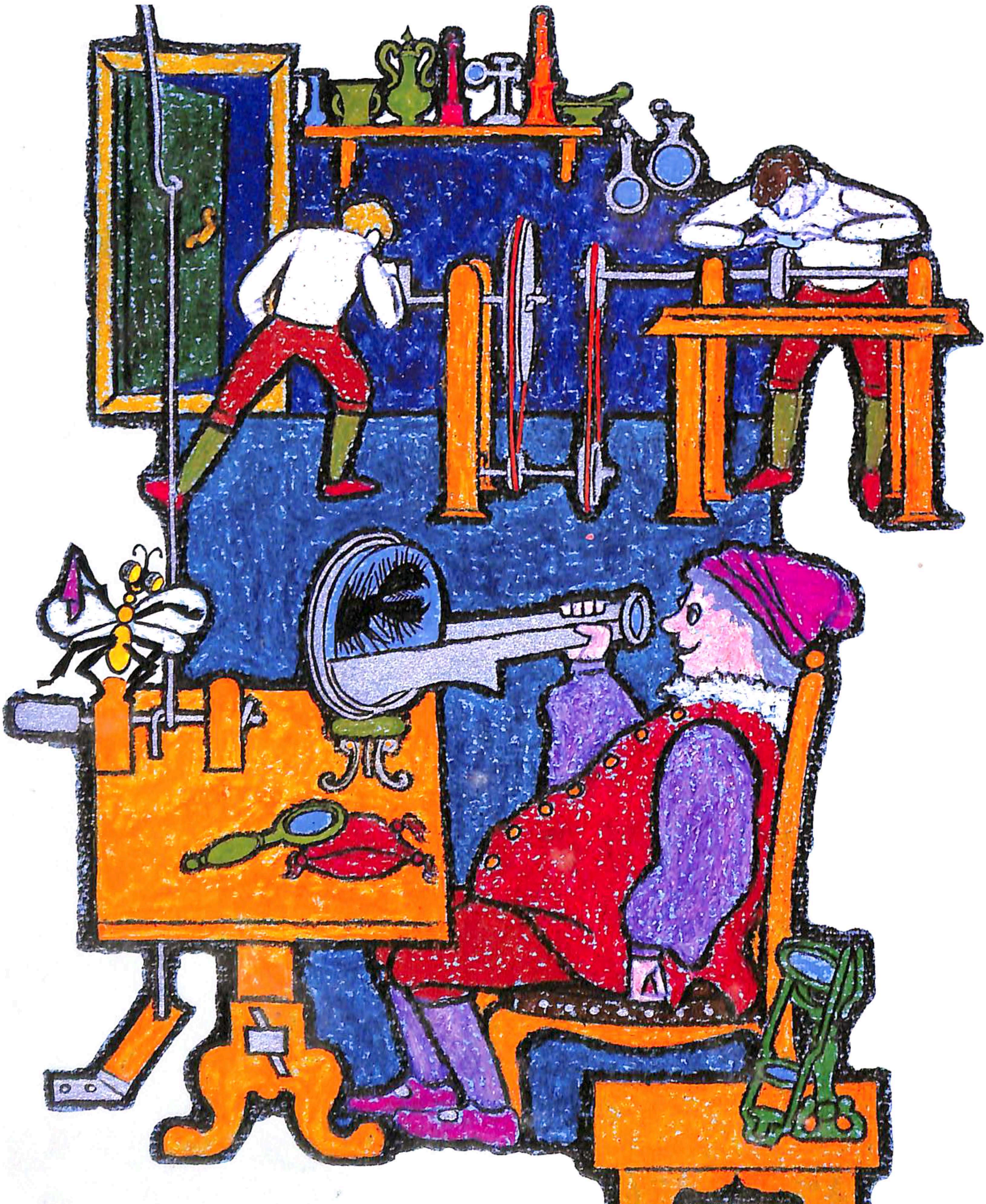
"बिल्कुल ऐसे तो नहीं पर इससे मिलते-जुलते ढंग से ही पहनते थे। नाक पर रहनेवाली 'टेक' समेत दोनों शीशों को टोपी से बांधा जाता था और टोपी के साथ ही चश्मा पहना जाता था। या फिर शीशे चमड़े की पट्टी में लगाये जाते थे और इस पट्टी को सिर पर बांधा जाता था। सबसे पहले एक बादशाह के डाक्टर को यह तरीका सूझा था। बादशाह की नाक से चश्मा बार-बार गिर जाता था, तो बादशाह बहुत नाराज़ होते थे। अब बादशाह बेहद खुश हुआ, अपने दरबारी डाक्टर का शुक्रिया अदा करने लगा। जब डाक्टर मर गया, तो बादशाह ने उसकी कब्र पर सुनहरे अक्षरों से ये शब्द खुदवाये: 'चश्मे का अन्वेषक सल्वीनो अर्माती यहां चिर निद्रा में सो रहा है। परमात्मा, उसके पाप क्षमा करना!'"

यह कहानी सुनाकर दादा फिर से अखबार पढ़ने लगे। पर वे ज़्यादा देर नहीं पढ़ सके, "बादशाही" ढंग से चश्मा ज़्यादा देर तक नहीं पहन सके। बार-बार खिसकती डोरी ठीक करते और गांठ बांधते वे तंग आ गये। जब गांठ दसवीं बार खुली तो दादा से न रहा गया:

"चलो जल्दी से दुकान चलें, नहीं तो चश्मा टूट ही जायेगा।"

अब फिर से दादा के कानों के पीछे दो बम हैं और चश्मा अब नहीं गिरता।





लंबी नाक किसलिए?

है न कमाल की बात: कल तक मैं पांच साल का था, आज छह साल का हो गया?! एक दिन में ही मैं एक साल बड़ा हो गया।

बात यह है कि आज मेरा जन्म दिन है। कितनी अच्छी बात है! सब लोग मुझे तोहफ़े दे रहे हैं।

मां ने ड्राइंग की कापी और रंग खरीदे हैं। पापा ने गेंद और बुरातीनो की कहानी की किताब। बस दादा ने ही कुछ नहीं खरीदा। उन्होंने अपना बक्सा टटोलकर उसमें से पुरानी दूरबीन निकाली, जो उनके पिता जी ने कभी उन्हें दी थी। दादा ने दूरबीन मुझे दे दी, बोले:

"लो, रखो। मेरा चश्मा अब तुम्हारे काम आयेगा!"

"धन्यवाद, दादा जी! पर आप इसे चश्मा क्यों कह रहे हैं? यह तो दूरबीन है।"

"वो तो ठीक है। पर इसे दूरबीन इसीलिए कहते हैं कि इसकी मदद से आदमी दूर की चीज़ें भी साफ़-साफ़ देख सकता है, चश्मे की ही तरह इससे भी नज़र तेज़ होती है। एक बात और भी है, अगर मामूली चश्मा न बना होता, तो दूरबीन भी न बनती।"

तब दादा ने मुझे यह बात बताई।

बहुत पहले शीशे की चीज़ें बनानेवाला एक कारीगर था। एक दिन आतिशी शीशा लेकर वह उससे चींटी की टांग देखने लगा। टांग इतनी बड़ी दिखी, जैसे कि लकड़ी का पूरा लट्ठा हो।

एक शीशे से ही ऐसा चमत्कार! अगर दो या तीन शीशे लिये जायें तो? उनसे तो चीज़ें और भी बड़ी दिखेंगी।

कारीगर ने ऐसा करके देखा, उसका अनुमान सही निकला।

और तो सब अच्छा था; पर शीशे हाथ में पकड़े रहने से असुविधा होती थी। हां अगर दोहरा या तिहरा चश्मा बना लिया जाये, तो हाथ खाली हो जायें, उनसे कुछ काम किया जा सके। लेकिन इतनी लंबी नाक कहां से आये कि सभी शीशे उस पर टिक जायें। सो कारीगर ने फ़ैसला किया:

"नाक के बिना ही काम चलाना होगा। पर कैसे?"

वह सोचता रहा, सोचता रहा और आखिर एक तरकीब उसे सूझ गई। लोहे की लंबी नली उसके काम आई। उसके अंदर तो सारे शीशे खूब अच्छी तरह टिके रहते थे।

बस इस तरह दूरबीन बनी।

जहाज़ियों को वह तुरंत ही भा गई। दूर-दूर की यात्राओं पर जाते हुए वे उसे अपने साथ ले जाने लगे। दूरबीन से समुद्र पर नज़र रखना अच्छा था: दूर-दूर तक दिखाई देता था।

आंख पर दूरबीन लगाये खड़ा जहाज़ी रह-रहकर चिल्लाता:

"बाईं ओर नाव है! सामने ज़मीन है!"

"तुम भी दूरबीन से देखो और जैसे जहाज़ी अपने कप्तान को रपट देता था, वैसे ही मुझे सब कुछ बताओ," दादा ने कहा।

सो मैं देखने लगा। खिड़की में अगर कोई दिलचस्प चीज़ दिखाई देती, तो मैं दादा को बताता:

"बाईं ओर को हवाई जहाज़ उड़ता जा रहा है! सामने गौरैया टहनी पर बैठी अपनी चोंच साफ़ कर रही है!"

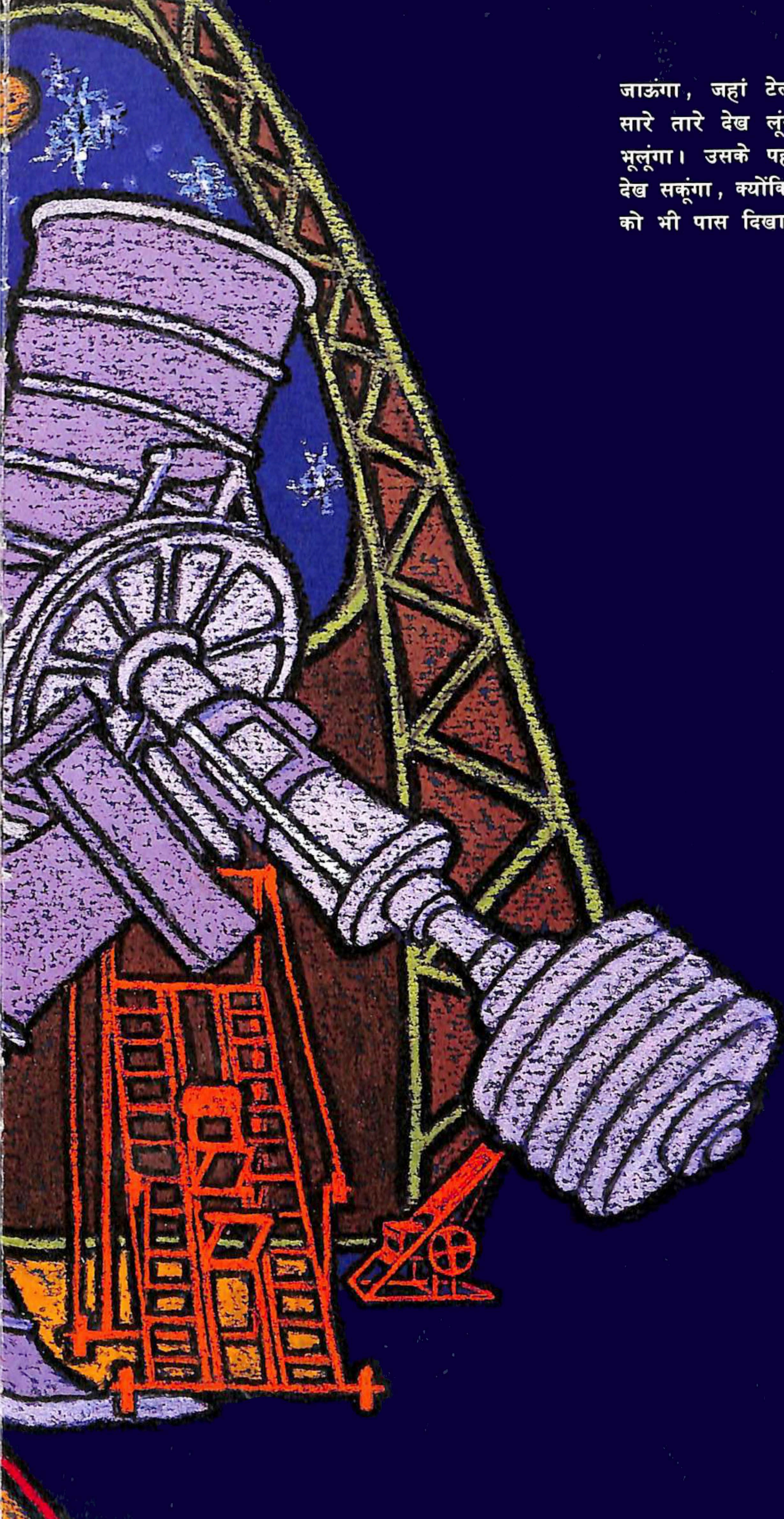
बड़ी अच्छी है मेरी दूरबीन। पर टेलीस्कोप से उसका क्या मुकाबला! टेलीस्कोप के बारे में भी दादा ने मुझे बताया है।

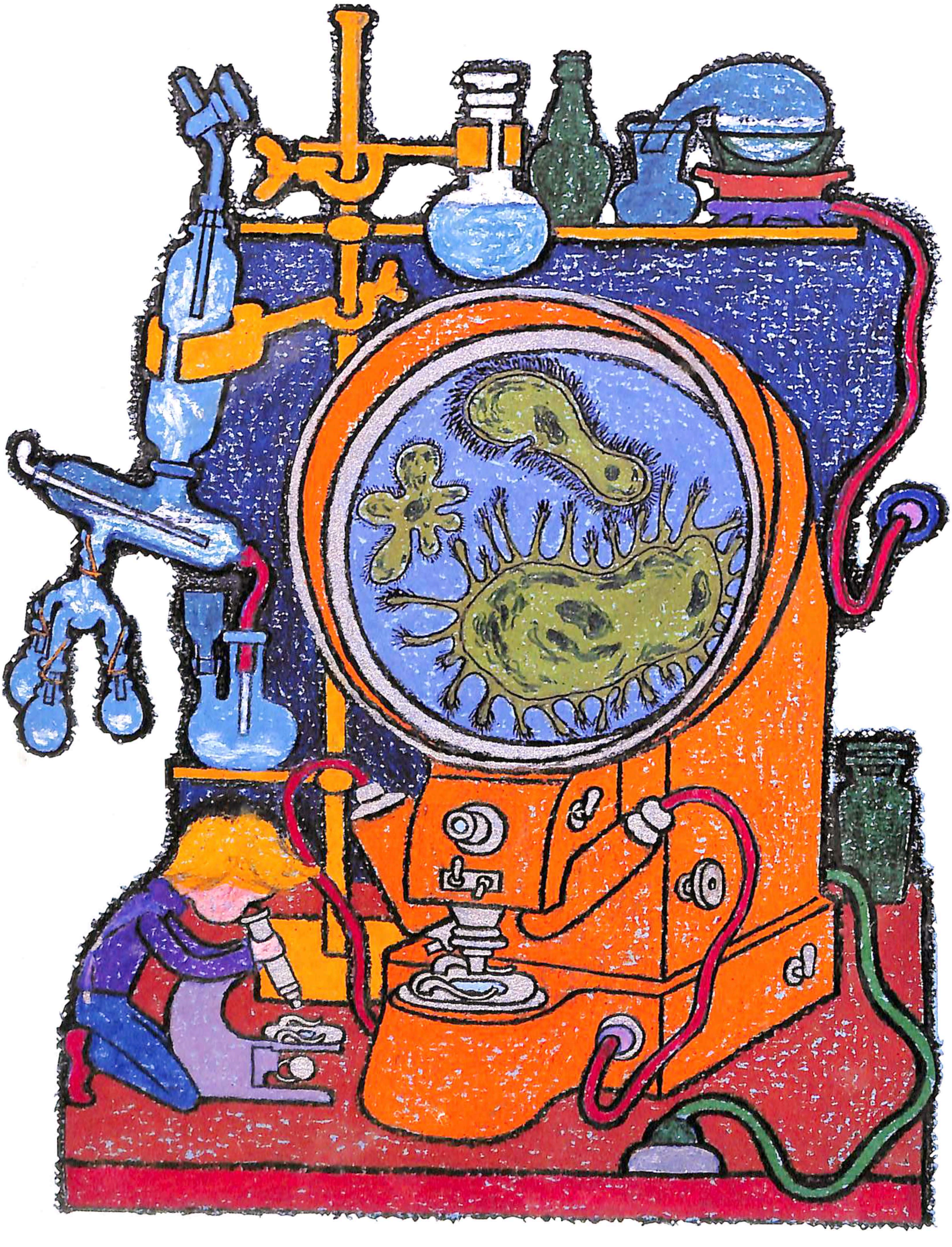
टेलीस्कोप भी दूरबीन ही है, लेकिन बहुत बड़ी और बहुत भारी। उसे हाथों में नहीं उठा सकते। टेलीस्कोप तोप जैसा होता है और तोप की ही तरह पक्के आधार पर रखा होता है। उसके शीशे इतने तेज़ होते हैं कि ज़रा सा टिम-टिमाता तारा भी उसमें साफ़ देखा जा सकता है।

बड़ा होकर मैं ज़रूर दादा के साथ वेधशाला



जाऊंगा, जहां टेलीस्कोप लगा हुआ है। मैं तब सारे तारे देख लूंगा। चंद्रमा को देखना भी नहीं भूलूंगा। उसके पहाड़, रेगिस्तान और सूखे समुद्र देख सकूंगा, क्योंकि दूरबीन-टेलीस्कोप दूर की चीज़ों को भी पास दिखाता है।





क्यों, क्यों, क्यों?

आये दिन मैं दादा के कान खाता रहता हूं:

"बिल्ली म्याऊं-म्याऊं क्यों करती है? हवा क्यों चलती है?"

क्यों, क्यों, क्यों?

दादा हैरान होते हैं:

"क्या तुम हमेशा क्यों-क्यों करते रहते हो?"

मैं खुद नहीं जानता, क्यों मेरे मुंह से बार-बार "क्यों" निकलता है?

आज भी यही हुआ। दादा ने कहा: "चश्मा"। और मैं फिर से अपनी बात ले बैठा: "चश्मा क्यों?"

दादा बोले:

"चश्मा आंखों पर पहनते हैं न? फ़ारसी में आंखों को चश्म कहते हैं। चश्म से बना चश्मा। मिलते-जुलते शब्द हैं न?"

फिर दादा ने कहा:

"आज हम-तुम यूरा के स्कूल जायेंगे।"

"स्कूल क्यों?"

"क्योंकि तुम्हारा भैया फिर से टेस्टों में फ़ेल हो गया है।"

उधर दादा पढ़ाई के बाद खाली हो गये स्कूल में अध्यापकों के कमरे में यूरा की अध्यापिका से बातें कर रहे थे, इधर मैं चुपके-चुपके क्लासों में झांक रहा था। एक क्लास में मुझे स्टैंड पर लगी नली दिखी।

यूरा की अध्यापिका के साथ बातचीत के बाद खिन्न दादा जब मेरे पास आये, तो मैंने फिर अपनी क्यों-क्यों लगा दी:

"वो नली स्टैंड पर क्यों लगी हुई है?"

"यह स्टैंड पर लगी नली नहीं, सूक्ष्मदर्शी है, इसे माइक्रोस्कोप भी कहते हैं। यह सभी छोटी-छोटी सूक्ष्म चीज़ों को बड़ा करके दिखाता है। अदृश्य वस्तुएं भी इसमें दिखाई दे जाती हैं। देखना चाहते हो?"

यह भी कोई पूछने की बात है! यूरा की अध्यापिका से इजाज़त लेकर हम सूक्ष्मदर्शी देखने क्लास में चले गये।

सूक्ष्मदर्शी में भी दूरबीन जैसी नली होती है। वह स्टैंड पर लगी होती है और उसकी आंख नीचे को होती है, बिल्कुल छोटी सी चौकी की ओर जिसके बीचोंबीच छेद होता है। इस चौकी के नीचे गोल दर्पण लगा होता है।

दादा ने कांच की पतली सी पट्टी ढूंढ ली, उस पर पास ही रखी बोतल से पानी की एक बूंद डाली, कांच को चौकी पर इस तरह रखा कि पानी की बूंद छेद के ऐन ऊपर आ गई। फिर नली के ऊपर आंख लगाकर वह दर्पण को इधर-उधर घुमाने लगे।

"आप दर्पण क्यों घुमा रहे हैं?" मैंने फिर से अपनी रट लगाई।

"ताकि रोशनी बूंद पर पड़े। नहीं तो कुछ दिखाई नहीं देगा। आहा, अब ठीक हो गया। देखो तो यह बूंद। नहीं, पहले ऐसे ही देखो।"

मैंने देखा, मुझे उसमें कोई खास चीज़ नज़र नहीं आई। बूंद जैसी बूंद थी।

पर जब सूक्ष्मदर्शी की नली में से उसमें नज़र डाली, तो डर ही गया। बूंद कहां गई? उसकी जगह पूरा समुद्र फैला हुआ था और उसमें भयानक जीव तैर रहे थे, मूंछों वाले और रोयों वाले।

मूंछों वाले पैरामेसियम कहलाते हैं, वे देखने में ही डरावने लगते हैं, पर असल में वे लोगों के लिए खतरनाक नहीं हैं। लेकिन अदृश्य जीवाणुओं की बात और है, वे प्रायः लोगों को क्षति पहुंचाते हैं। पीने का पानी साफ़ न हो, तो ये जीवाणु पेट में पहुंच जायेंगे और तब आदमी बीमार पड़ सकता है।

...दादा के साथ घर लौटते हुए मैं सारा समय सूक्ष्मदर्शी और जीवाणुओं की ही बात सोचता रहा। फिर मैं यूरा के बारे में सोचने लगा। हो सकता है वह इसलिए पढ़ाई में अच्छा नहीं चल

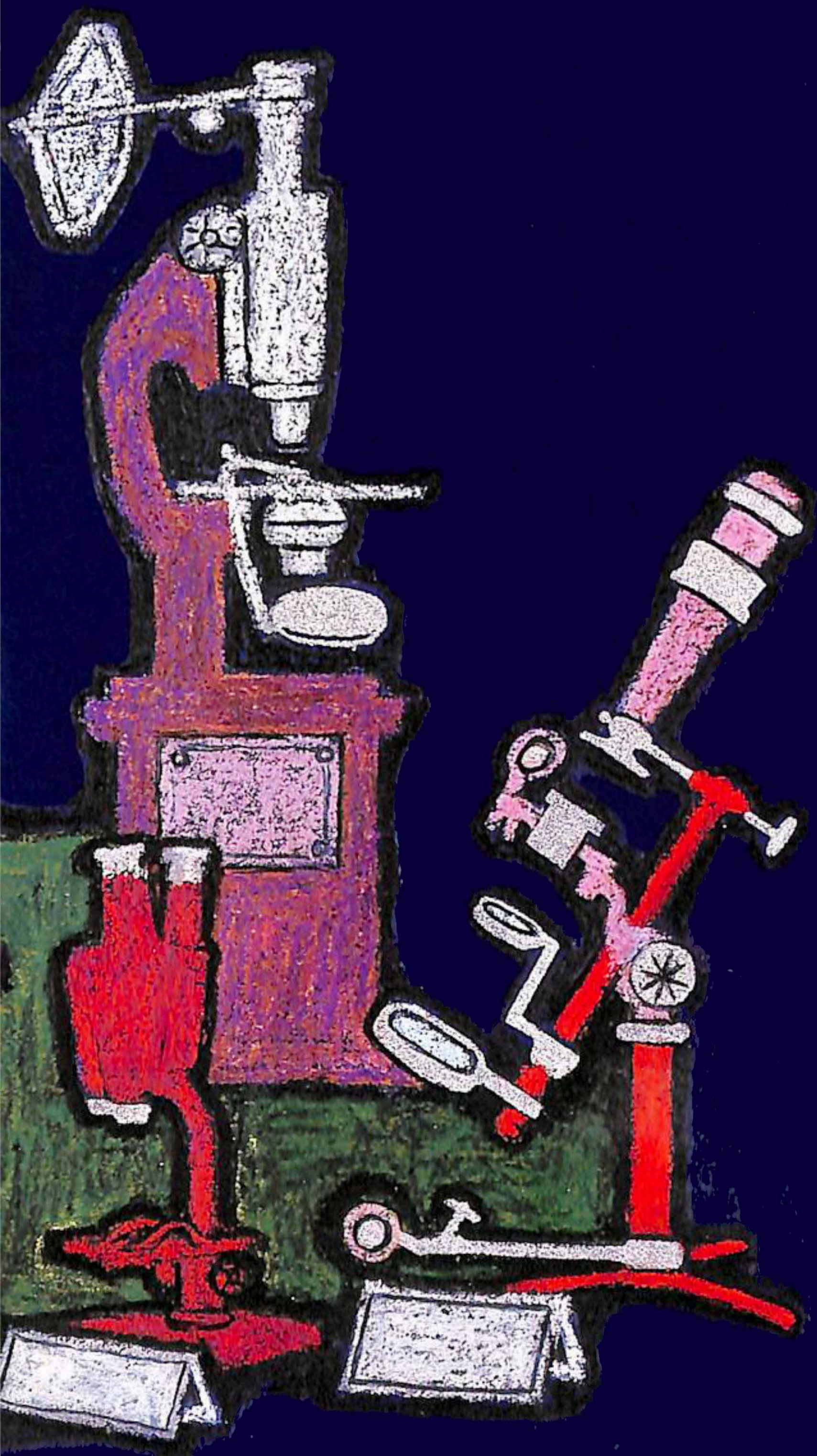


रहा है कि उसके शरीर में "फ़ेल करने वाले जीवाणु" पहुंच गये हैं? हो सकता है यूरा को सूक्ष्मदर्शी से देखें तो ये जीवाणु दिखाई दे जायें, और तब उसका इलाज किया जा सके।

मैंने दादा से यह बात पूछी।

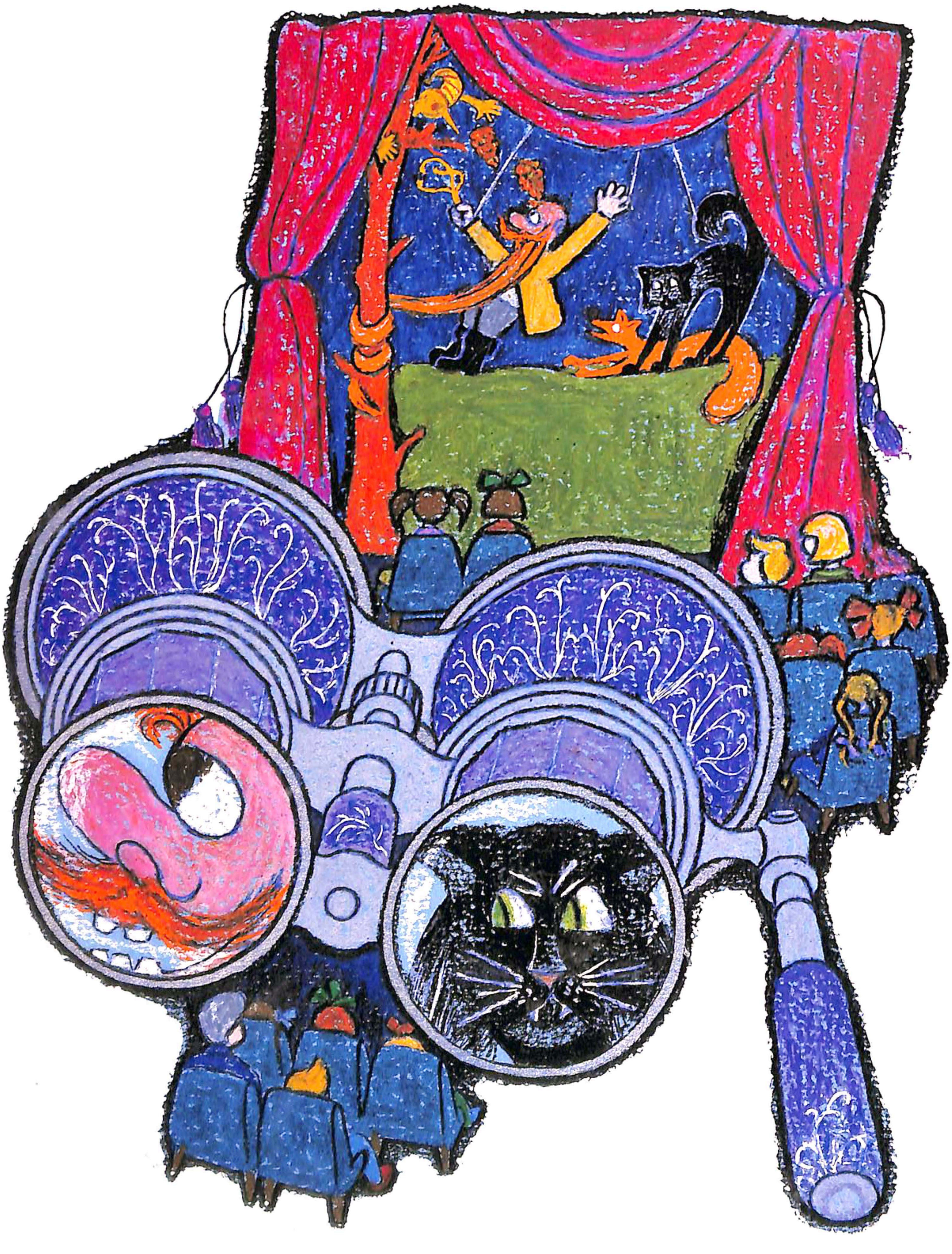
दादा हंस पड़े:

"हमारा यूरा क्या पानी की बूंद है या फूल की पंखुड़ी, या कीड़े-मकोड़े की टांग, या हरी पन्नी? नहीं, लोगों को सूक्ष्मदर्शी से नहीं देखा जाता। हां, यदि यूरा का बाल, नाख़ून या उसकी उंगली से लिये गये ख़ून की बूंद सूक्ष्मदर्शी से देखी जाये तो बात दूसरी है। पर यह तो सूक्ष्मदर्शी के बिना ही स्पष्ट है कि यूरा में 'फ़ेल करने वाले जीवाणु' हैं। कोई बात नहीं, हम उसका इलाज कर देंगे!"



भांति-भांति के माइक्रोस्कोप।





मैं करावास से नहीं डरता!

पापा ने जन्मदिन पर मुझे जो किताब दी थी उसमें काठ के लड़के बुरातीनो की कहानी है। कहानी में उसके दोस्त प्येरो, मल्वीना और अर्तेमोन नाम का कुत्ता भी हैं और उसके दुश्मन कराबास-बराबास, अलीसा लोमड़ी और बज़ीलियो बिल्ला भी।

पहले तो मैंने इन सबको तस्वीरों में ही देखा था, पर एक दिन जीते-जागते देखा।

ऐसा तब हुआ जब मैं दादा के साथ कठपुतली थियेटर गया।

हमें सीटें बहुत खराब मिली थीं – हाल के बिल्कुल अंत में, पीछे की दीवार के पास। दर्शक बुरातीनो की शरारतों पर खुश हो रहे थे, दुष्ट कराबास-बराबास पर नाराज़ हो रहे थे, पर मैं मुंह लटकाये बैठा था। दूसरे बच्चों को सब कुछ दिखाई दे रहा था और मुझे कुछ भी नहीं। दूर से कुछ पता ही नहीं चलता था मंच पर क्या हो रहा है।

यह तो अच्छा हुआ, दादा का चश्मा काम आ गया। बम-कमानी वाला मामूली चश्मा नहीं, बाइनोकुलर-चश्मा।

इसमें दो छोटी-छोटी नलियां होती हैं, जो एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। इन नलियों में भी शीशे लगे होते हैं, एक तरफ़ छोटे, दूसरी तरफ़ बड़े।

पहले तो दादा खुद बाइनोकुलर से देखते रहे, फिर उन्होंने बाइनोकुलर मुझे दे दिया। मैं खुश हो गया, आंखें फाड़कर छोटे शीशों में देखने लगा, पर कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा था। कहां है बुरातीनो, कहां है मल्वीना?! मेरे सामने दो धुंधले से गोले थे, उनमें कुछ झिल-मिला रहा था, पर वह क्या था कुछ पता नहीं चलता था।

दादा ने जब देखा कि मैं परेशान हो रहा हूं, किसी तरह बाइनोकुलर इस्तेमाल ही नहीं कर पा रहा, तो फुसफुसाये:

"नलियों के बीच लगा पेच घुमाओ, सब ठीक हो जायेगा।"

सचमुच ही जब मैंने पेच घुमाया, तो दो गोलों का एक गोला बन गया और उसमें मुझे बुरातीनो साफ़-साफ़ दीख पड़ा। लगा वह बिल्कुल पास ही है।

पर मेरी खुशी बहुत देर तक नहीं चली। अचानक मोटी-मोटी नाक, टेढ़े मुंह और झबरीले बालों वाला कराबास-बराबास बाइनोकुलर में से मुझे घूरता नज़र आया। इस भूतने से डरकर मैंने जल्दी से आंखें मीच लीं।

"दादा जी, मुझे नहीं चाहिए बाइनोकुलर। मुझे डर लगता है।"

"तुम कराबास-बराबास को बाइनोकुलर के दूसरी ओर से देखो – जहां शीशे बड़े हैं।"

मैंने दादा का कहना माना। दुष्ट कराबास तुरंत ही मुझसे दूर हो गया, छोटा सा बन गया, अब उससे ज़रा भी डर नहीं लगता था।

बस फिर मैं बाइनोकुलर को ऐसे ही घुमाने लगा। सभी अच्छे पात्रों को – बुरातीनो, मल्वीना और अर्तेमोन कुत्ते को "पास लाने वाले" छोटे शीशों से देखता था, और बुरे पात्रों – कराबास-बराबास, अलीसा लोमड़ी और बज़ीलियो बिल्ले को "दूर ले जाने वाले" बड़े शीशों से।

दादा खूब हंसे: "भई वाह, क्या सोची है तुमने!" उस दिन से जब भी मैं कोई बुरा काम करता हूं, तो दादा अपना बाइनोकुलर उठा लेते हैं और "बुरे" शीशों से मेरी ओर देखते हैं।

थोड़ी देर तक तो मैं सहता रहता हूं, पर फिर कहता हूं: "नाराज़ मत होइये, दादा जी। मैं आगे से ऐसा नहीं करूंगा। मेरी ओर 'अच्छे' शीशों से देखिये!"

कौन सा चश्मा ज़्यादा अच्छा है?

दादा की पुरानी एल्बम में मैंने एक बहादुर जहाज़ी का फ़ोटो देखा। वह सफ़ेद गोट और सुनहरे लंगर वाली काली टोपी पहने हैं, कंधों पर लगी फीतियों पर सितारे हैं, आस्तीनों पर पट्टियां और सीने पर बहुत सारे सैनिक पदक लगे हुए हैं।

मैंने दादा से पूछा:

"यह कौन है?"

"लो, देखो ज़रा इसे। अपने दादा को नहीं पहचानता!"

देखा, अरे, यह तो सचमुच दादा ही हैं। पर बूढ़े नहीं, जैसे अब हैं, बल्कि जवान हैं। मूंछें भी हैं, लेकिन सफ़ेद नहीं, काली। मुस्कराती आंखें भी बिल्कुल उनकी हैं, हां उनके गिर्द अभी झुर्रियां नहीं पड़ीं।

फ़ोटोग्राफ़र ने दादा का फ़ोटो किसी ऊंची नली के पास खींचा था।

"यह नली किसलिए है?"

"क्या मतलब किसलिए? यह भी मेरा चश्मा है। फ़ासिस्टों से लड़ाई के दिनों में यह चश्मा मेरे खूब काम आया था। मैं तब नौसेना में था, पनडुब्बी पर।"

मैं दादा के पीछे पड़ गया:

"सुनाओ, सुनाओ!"

तो उन्होंने यह सुनाया।

पनडुब्बी का यह नाम इसलिए पड़ा है कि यह जहाज़ पानी में डूबकर चलता है।

दूसरे सारे जहाज़ पानी के ऊपर चलते हैं, मगर नीचे नहीं जाते। और यह है कि ऊपर कभी-कभार ही निकलता है। ज़्यादातर मछलियों के राज में ही रहता है। ज़रूरत पड़े तो समुद्र के तले पर ही खड़ा हो जाता है, सितारों, मछलियों और केकड़ों के बीच, जब तक उसे ऊपर उठने का हुक्म नहीं दिया जाता, वहीं खड़ा रहता है।

पनडुब्बी जब पानी के अंदर चली जाती है, तो उसे कोई नहीं देख सकता, पर वह सबको देखती रहती है।

पनडुब्बी का चश्मा उसे सब कुछ दिखाता है, उसे आंखें देता है। इसे पेरिस्कोप कहते हैं।

यह एक लंबी नली की शक्ल का होता है। जब पनडुब्बी पानी के अंदर होती है, तो इस नली का सिरा पानी से ज़रा सा बाहर निकला रहता है और अपनी कांच की आंख से चारों ओर सब कुछ देखता रहता है। पेरिस्कोप को जो कुछ नज़र आता है, वह सब पनडुब्बी में नली के दूसरे सिरे पर आंखें गड़ाये बैठे जहाज़ी को भी दिखाई देता है।

ऐसी ही एक पनडुब्बी पर मेरे दादा भी लड़ाई में लड़े थे और ऐसे ही चश्मे से देखते थे।

एक दिन दादा की पनडुब्बी को आदेश मिला कि वह फ़ासिस्ट विध्वंसक युद्धपोत को ढूंढकर उसे नष्ट कर दे। सोवियत जहाज़ी काफ़ी समय से शत्रु के इस जहाज़ को नष्ट करने की ताक में थे।

सुबह तड़के पनडुब्बी समुद्र में गई। दादा पेरिस्कोप पर आंखें गड़ाये थे, उसकी नली को इधर-उधर घुमा रहे थे। समुद्र सुनसान था। सफ़ेद फेनिल लहरों के अलावा चारों ओर कुछ भी नहीं था।

अगले दिन बहुत दूर, जहां धरती और आकाश मिलते हैं, वहां पर एक छोटा सा धब्बा नज़र आया। पास आते-आते यह धब्बा शत्रु का विशाल विध्वंसक जहाज़ बन गया। उस पर मोटा बख़्तर चढ़ा हुआ था, जो सभी गोलों से नहीं टूट सकता। चारों ओर विभीषण तोपें निकली हुई थीं।

"आहा, पकड़ा गया, फ़ासिस्ट! अब तू बचकर नहीं निकल पायेगा," दादा ने मन ही मन सोचा और फिर उस दुष्ट को नष्ट करने का आदेश दिया।

खुद वे पेरिस्कोप में शत्रु के जहाज़ पर नज़र लगाये हुए थे। उन्होंने देखा नुकीली नाक वाला टोरपीडो पानी के अंदर ही अंदर अपने लक्ष्य की

और बढ़ चला है। वह शत्रु के जहाज़ के पास ही पास आता जा रहा है। और लो! ज़ोरदार विस्फोट हुआ, जहाज़ लाल-काले धुएं से घिर गया, दो टुकड़े होकर डूबने लगा।

"इस दुष्ट को डुबोने की यह याददाश्त है," दादा ने अंत में कहा।

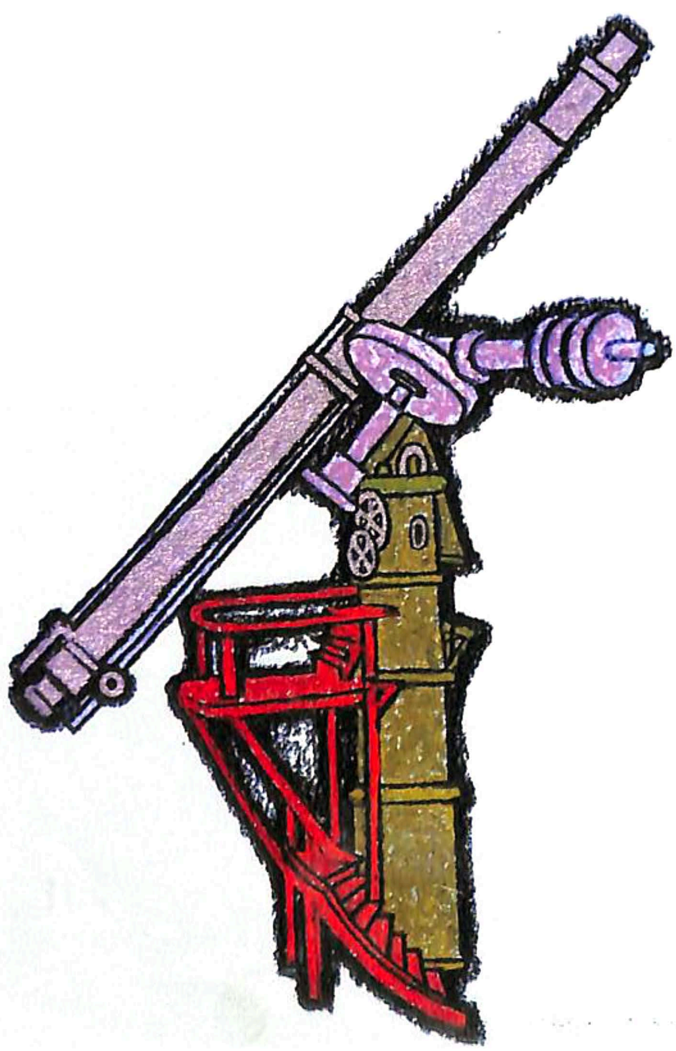
इन शब्दों के साथ उन्होंने अपना पुराना फ़ोटो हाथ में लिया और वह बड़ा सा सितारा दिखाया, जो दूसरे पदकों के साथ उनके वक्ष की शोभा बढ़ा रहा था।

...मुझे यह चहुंमुखदर्शी-पेरिस्कोप बहुत पसंद आया! मैं भी बड़ा होकर इस पेरिस्कोप में शत्रु के जहाज़ों पर नज़र रखूंगा...

या नहीं, टेलीस्कोप से दूर के तारे देखूंगा।

या फिर सूक्ष्मदर्शी से अदृश्य जीवाणुओं को खोजूंगा।

समझ में नहीं आता कौन सा चश्मा चुनूं?!





अनुवादक – योगेन्द्र नागपाल

चित्रकार – इरीना किसेलेव्स्काया

Г. Юрмин
ДЕДУШКИНЫ ОЧКИ
на хинди

G. Yurmin
GRANDPA'S GLASSES
in Hindi

© हिन्दी अनुवाद • रादुगा प्रकाशन • १९८४

Перевод сделан
по книге Г. Юрмин, „Дедушкины очки"
М. „Малыш", 1972 г.
Для дошкольного возраста.

Ю $\frac{4803010102-008}{031(01)-84}$ 387-83

